दादी माँ 2

कमज़ोरी ही है अपनी, पर सच तो यह है कि ज़रा-सी कठिनाई पड़ते; बीसों गरमी, बरसात और वसंत देखने के बाद भी, मेरा मन सदा नहीं तो प्राय: अनमना-सा हो जाता है। मेरे शुभचिंतक मित्र मुँह पर मुझे प्रसन्न करने के लिए आनेवाली छुट्टियों की सूचना देते हैं और पीठ पीछे मुझे कमज़ोर और ज़रा-सी प्रतिकूलता से घबरानेवाला कहकर मेरा मज़ाक उड़ाते हैं। मैं सोचता हूँ, 'अच्छा, अब कभी उन बातों को न सोचूँगा। ठीक है, जाने दो, सोचने से होता ही क्या है'। पर, बरबस मेरी आँखों के सामने शरद की शीत किरणों के समान स्वच्छ, शीतल किसी की धुँधली छाया नाच उठती है।

मुझे लगता है जैसे क्वार के दिन आ गए हैं। मेरे गाँव के चारों ओर पानी ही पानी हिलोरें ले रहा है। दूर के सिवान से बहकर आए हुए मोथा और साईं की अधगली घासें, घेऊर और बनप्याज़ की जड़ें तथा नाना प्रकार की बरसाती घासों के बीज, सूरज की गरमी में खौलते हुए पानी में सड़कर एक विचित्र गंध छोड़ रहे हैं। रास्तों में कीचड़ सूख गया है और गाँव के लड़के किनारों पर झागभरे जलाशयों में धमाके से कूद रहे हैं। अपने-अपने मौसम की अपनी-अपनी बातें होती हैं। आषाढ़ में आम और जामुन न मिलें, चिंता नहीं, अगहन में चिउड़ा और गुड़ न मिले, दुख नहीं, चैत के दिनों में लाई के साथ गुड़

की पट्टी न मिले, अफ़सोस नहीं, पर क्वार के दिनों में इस गंधपूर्ण झागभरे जल में कूदना न हो तो बड़ा बुरा मालूम होता है। मैं भीतर हुड़क रहा था। दो-एक दिन ही तो कूद सका था, नहा-धोकर बीमार हो गया। हलकी बीमारी न जाने क्यों मुझे अच्छी लगती है। थोड़ा-थोड़ा ज्वर हो, सर में साधारण दर्द और खाने के लिए दिनभर नींबू और साबू। लेकिन इस बार ऐसी चीज़ नहीं थी। ज्वर जो चढ़ा तो चढ़ता ही गया। रज़ाई पर रज़ाई—और उतरा रात बारह बजे के बाद।

दिन में मैं चादर लपेटे सोया था। दादी माँ आईं, शायद नहाकर आई थीं, उसी झागवाले जल में। पतले-दुबले स्नेह-सने शरीर पर सफ़ेद किनारीहीन धोती, सन-से सफ़ेद बालों के सिरों पर सद्यः टपके हुए जल की शीतलता। आते ही उन्होंने सर, पेट छुए। आँचल की गाँठ खोल किसी अदृश्य शक्तिधारी के चबूतरे की मिट्टी मुँह में डाली, माथे पर लगाई। दिन-रात चारपाई के पास बैठी रहतीं, कभी पंखा झलतीं, कभी जलते हुए हाथ-पैर कपड़े से सहलातीं, सर पर दालचीनी का लेप करतीं और बीसों बार छू-छूकर ज्वर का अनुमान करतीं। हाँडी में पानी आया कि नहीं? उसे पीपल की छाल से छौंका कि नहीं? खिचड़ी में मूँग की दाल एकदम मिल तो गई है? कोई बीमार के घर में सीधे बाहर से आकर तो नहीं चला गया, आदि लाखों प्रश्न पूछ-पूछकर घरवालों को परेशान कर देतीं।

दादी माँ को गँवई-गाँव की पचासों किस्म की दवाओं के नाम याद थे। गाँव में कोई बीमार होता, उसके पास पहुँचतीं और वहाँ भी वही काम। हाथ छूना, माथा छूना, पेट छूना। फिर भूत से लेकर मलेरिया, सरसाम, निमोनिया तक का अनुमान विश्वास के साथ सुनातीं। महामारी और विशूचिका के दिनों में रोज़ सवेरे उठकर स्नान के बाद लवंग और गुड़-मिश्रित जलधार, गुग्गल और धूप। सफ़ाई कोई उनसे सीख ले। दवा में देर होती, मिश्री या शहद खत्म हो जाता, चादर या गिलाफ़ नहीं बदले जाते, तो वे जैसे पागल हो जातीं। बुखार तो मुझे अब भी आता है। नौकर पानी दे जाता है, मेस-महाराज अपने मन से पकाकर खिचड़ी या साबू। डॉक्टर साहब आकर नाड़ी देख जाते हैं और कुनैन मिक्सचर की शीशी की तिताई के डर से बुखार भाग भी जाता है, पर न जाने क्यों ऐसे बुखार को बुलाने का जी नहीं होता!

किशन भैया की शादी ठीक हुई, दादी माँ के उत्साह और आनंद का क्या कहना! दिनभर गायब रहतीं। सारा घर जैसे उन्होंने सर पर उठा लिया हो। पड़ोसिनें आतीं। बहुत बुलाने पर दादी माँ आतीं, "बहिन बुरा न मानना। कार–परोजन का घर ठहरा। एक काम अपने हाथ से न करूँ, तो होनेवाला नहीं।" जानने को यों सभी जानते थे कि दादी माँ कुछ करतीं नहीं। पर किसी काम में उनकी अनुपस्थिति वस्तुतः विलंब का कारण बन जाती। उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन दोपहर को मैं घर लौटा। बाहरी निकसार में दादी माँ किसी पर बिगड़ रही थीं। देखा, पास के कोने में दुबकी रामी की चाची खड़ी है। "सो न होगा, धन्नो! रुपये मय सूद के आज दे दे। तेरी आँख में तो शरम है नहीं। माँगने के समय कैसी आई थी! पैरों पर नाक रगड़ती फिरी, किसी ने एक पाई भी न दी। अब लगी है आजकल करने–फसल में दूँगी, फसल में दूँगी...अब क्या तेरी खातिर दूसरी फसल कटेगी?"

"दूँगी, मालकिन!" रामी की चाची रोती हुई, दोनों हाथों से आँचल पकड़े दादी माँ के पैरों की ओर झुकी, "बिटिया की शादी है। आप न दया करेंगी तो उस बेचारी का निस्तार कैसे होगा!"

"हट, हट! अभी नहाके आ रही हूँ!" दादी माँ पीछे हट गईं।

"जाने दो दादी," मैंने इस अप्रिय प्रसंग को हटाने की गरज से कहा, "बेचारी गरीब है, दे देगी कभी।"

"चल, चल! चला है समझाने..."

मैं चुपके से आँगन की ओर चला गया। कई दिन बीत गए, मैं इस प्रसंग को एकदम भूल-सा गया। एक दिन रास्ते में रामी की चाची मिली। वह दादी को 'पूतों फलो दूधों नहाओ' का आशीर्वाद दे रही थी! मैंने पूछा, "क्या बात है, धन्नो चाची", तो उसने विह्वल होकर कहा, "उरिन हो गई बेटा, भगवान भला करे हमारी मालकिन का। कल ही आई थीं। पीछे का सभी रुपया छोड़ दिया, ऊपर से दस रुपये का नोट देकर बोलीं, 'देखना धन्नो, जैसी तेरी बेटी वैसी मेरी, दस-पाँच के लिए हँसाई न हो।' देवता है बेटा, देवता।"

"उस रोज़ तो बहुत डाँट रही थीं?" मैंने पूछा।

"वह तो बड़े लोगों का काम है बाबू, रुपया देकर डाँटें भी न तो लाभ क्या!"

मैं मन-ही-मन इस तर्क पर हँसता हुआ आगे बढ़ गया।

किशन के विवाह के दिनों की बात है। विवाह के चार-पाँच रोज़ पहले से ही औरतें रात-रातभर गीत गाती हैं। विवाह की रात को अभिनय भी होता है। यह प्राय: एक ही कथा का हुआ करता है, उसमें विवाह से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक के सभी दृश्य दिखाए जाते हैं—सभी पार्ट औरतें ही करती हैं। मैं बीमार होने के कारण बारात में न जा सका। मेरा ममेरा भाई राघव दालान में सो रहा था (वह भी बारात जाने के बाद पहुँचा था)। औरतों ने उस पर आपत्ति की।

दादी माँ बिगड़ीं, "लड़के से क्या परदा? लड़के और बरह्मा का मन एक-सा होता है।"

मुझे भी पास ही एक चारपाई पर चादर उढ़ाकर दादी माँ ने चुपके से सुला दिया था। बड़ी हँसी आ रही थी। सोचा, कहीं ज़ोर से हँस दूँ, भेद खुल जाए तो निकाल बाहर किया जाऊँगा, पर भाभी की बात पर हँसी रुक न सकी और भंडाफोड़ हो गया।

देबू की माँ ने चादर खींच ली, "कहो दादी, यह कौन बच्चा सोया है। बेचारा रोता है शायद, दूध तो पिला दूँ।" हाथापाई शुरू हुई। दादी माँ बिगड़ीं, "लड़के से क्यों लगती है!"

सुबह रास्ते में देबू की माँ मिलीं, "कल वाला बच्चा, भाभी!" मैं वहाँ से ज़ोर से भागा और दादी माँ के पास जा खड़ा हुआ। वस्तुतः किसी प्रकार का अपराध हो जाने पर जब हम दादी माँ की छाया में खड़े हो जाते, अभयदान मिल जाता।

स्नेह और ममता की मूर्ति दादी माँ की एक-एक बात आज कैसी-कैसी मालूम होती है। परिस्थितियों का वात्याचक्र जीवन को सूखे पत्ते-सा कैसा नचाता है, इसे दादी माँ खूब जानती थीं। दादा की मृत्यु के बाद से ही वे बहुत उदास रहतीं। संसार उन्हें धोखे की टट्टी मालूम होता। दादा ने उन्हें स्वयं जो धोखा दिया। वे सदा उन्हें आगे भेजकर अपने पीछे जाने की झूठी बात कहा करते थे। दादा की मृत्यु के बाद कुकुरमुत्ते की तरह बढ़नेवाले, मुँह में राम बगल में छुरीवाले दोस्तों की शुभचिंता ने स्थिति और भी डाँवाडोल कर दी। दादा के श्राद्ध में दादी माँ के मना करने पर भी पिता जी ने जो अतुल संपत्ति व्यय की, वह घर की तो थी नहीं।

दादी माँ अकसर उदास रहा करतीं। माघ के दिन थे। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। पछुवा का सन्नाटा और पाले की शीत हड्डियों में घुसी पड़ती। शाम को मैंने देखा, दादी माँ गीली धोती पहने, कोनेवाले घर में एक संदूक पर दिया जलाए, हाथ जोड़कर बैठी हैं। उनकी स्नेह-कातर आँखों में मैंने आँसू कभी नहीं देखे थे। मैं बहुत देर तक मन मारे उनके पास बैठा रहा। उन्होंने आँखें खोलीं। "दादी माँ!", मैंने धीरे से कहा।

"क्या है रे, तू यहाँ क्यों बैठा है?"

"दादी माँ, एक बात पूछूँ, बताओगी न?" मैंने उनकी स्नेहपूर्ण आँखों की ओर देखा।

"क्या है, पूछ।"

"तुम रोती थीं?"

दादी माँ मुसकराईं, "पागल, तूने अभी खाना भी नहीं खाया न, चल-चल!"

"धोती तो बदल लो, दादी माँ", मैंने कहा।

"मुझे सरदी-गरमी नहीं लगती बेटा।" वे मुझे खींचती रसोई में ले गईं।

सुबह मैंने देखा, चारपाई पर बैठे पिता जी और किशन भैया मन मारे कुछ सोच रहे हैं। "दूसरा चारा ही क्या है?" बाबू बोले, "रुपया कोई देता नहीं। कितने के तो अभी पिछले भी बाकी हैं!" वे रोने-रोने-से हो गए।

"रोता क्यों है रे!" दादी माँ ने उनका माथा सहलाते हुए कहा, "मैं तो अभी हूँ ही।" उन्होंने संदूक खोलकर एक चमकती-सी चीज़ निकाली, "तेरे दादा ने यह कंगन मुझे इसी दिन के लिए पहनाया था।" उनका गला भर आया, "मैंने इसे पहना नहीं, इसे सहेजकर रखती आई हूँ। यह उनके वंश की निशानी है।" उन्होंने आँसू पोंछकर कहा, "पुराने लोग आगा-पीछा सब सोच लेते थे, बेटा।"

सचमुच मुझे दादी माँ शापभ्रष्ट देवी-सी लगीं। धुँधली छाया विलीन हो गई। मैंने देखा, दिन काफ़ी चढ़ आया है। पास के लंबे खजूर के पेड़ से उड़कर एक कौआ अपनी घिनौनी काली पाँखें फैलाकर मेरी खिड़की पर बैठ गया। हाथ में अब भी किशन भैया का पत्र काँप रहा है। काली चींटियों-सी कतारें धूमिल हो रही हैं। आँखों पर विश्वास नहीं होता। मन बार-बार अपने से ही पूछ बैठता है–'क्या सचमुच दादी माँ नहीं रहीं?'

❒ *शिवप्रसाद सिंह*

प्रश्न-अभ्यास

कहानी से

1. लेखक को अपनी दादी माँ की याद के साथ-साथ बचपन की और किन-किन बातों की याद आ जाती है?
2. दादा की मृत्यु के बाद लेखक के घर की आर्थिक स्थिति खराब क्यों हो गई थी?
3. दादी माँ के स्वभाव का कौन सा पक्ष आपको सबसे अच्छा लगता है और क्यों?

कहानी से आगे

1. आपने इस कहानी में महीनों के नाम पढ़े, जैसे–क्वार, आषाढ़, माघ। इन महीनों में मौसम कैसा रहता है, लिखिए।

2. 'अपने-अपने मौसम की अपनी-अपनी बातें होती हैं'–लेखक के इस कथन के अनुसार यह बताइए कि किस मौसम में कौन-कौन सी चीज़ें विशेष रूप से मिलती हैं?

अनुमान और कल्पना

1. इस कहानी में कई बार ऋण लेने की बात आपने पढ़ी। अनुमान लगाइए, किन-किन पारिवारिक परिस्थितियों में गाँव के लोगों को ऋण लेना पड़ता होगा और यह उन्हें कहाँ से मिलता होगा? बड़ों से बातचीत कर इस विषय में लिखिए।
2. घर पर होनेवाले उत्सवों / समारोहों में बच्चे क्या-क्या करते हैं? अपने और अपने मित्रों के अनुभवों के आधार पर लिखिए।

भाषा की बात

1. नीचे दी गई पंक्तियों पर ध्यान दीजिए–

   ज़रा-सी कठिनाई पड़ते
   अनमना-सा हो जाता है
   सन-से सफ़ेद

   - समानता का बोध कराने के लिए सा, सी, से का प्रयोग किया जाता है। ऐसे पाँच और शब्द लिखिए और उनका वाक्य में प्रयोग कीजिए।
2. कहानी में 'छू-छूकर ज्वर का अनुमान करतीं, पूछ-पूछकर घरवालों को परेशान कर देतीं'–जैसे वाक्य आए हैं। किसी क्रिया को ज़ोर देकर कहने के लिए एक से अधिक बार एक ही शब्द का प्रयोग होता है। जैसे वहाँ जा-जाकर थक गया, उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर देख लिया। इस प्रकार के पाँच वाक्य बनाइए।
3. बोलचाल में प्रयोग होनेवाले शब्द और वाक्यांश 'दादी माँ' कहानी में हैं। इन शब्दों और वाक्यांशों से पता चलता है कि यह कहानी किसी विशेष क्षेत्र से संबंधित है। ऐसे शब्दों और वाक्यांशों में क्षेत्रीय बोलचाल की खूबियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए–निकसार, बरह्मा, उरिन, चिउड़ा, छौंका इत्यादि शब्दों को देखा जा सकता है। इन शब्दों का उच्चारण अन्य क्षेत्रीय बोलियों में अलग ढंग से होता है, जैसे–चिउड़ा को चिड़वा, चूड़त्र, पोहा और इसी तरह छौंका को छौंक, तड़का भी कहा जाता है। निकसार, उरिन और बरह्मा शब्द क्रमशः निकास, उऋण और ब्रह्मा शब्द का क्षेत्रीय रूप हैं। इस प्रकार के दस शब्दों को बोलचाल में उपयोग होनेवाली भाषा / बोली से एकत्र कीजिए और कक्षा में लिखकर दिखाइए।